विष्णुपुराण में वर्णित विष्णु– भक्ति का स्वरूप

अरुण कुमार*

सनातन धर्म के प्राणभूत पुराणों का धार्मिक महत्व स्वयं सिद्ध है और सनातन धर्म में ये वेदों के तुल्य ही समादृत हैं। जनमानस में इनकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है। विष्णुपुराण की रचनापरक प्रवृत्ति धर्मोन्मुखी है जिसमें वैष्णव मत का समुचित परिपाक प्राप्त होता है। इसके वर्ण्य– विषयों में विष्णु के आराध्य पक्ष को प्रधानता दी गयी है। इसमें यह प्रदर्शित किया गया है कि विष्णु के स्वरूप में ही विश्व का सृजन, संरक्षण तथा संहरण संन्निहित है तथा उनकी ही भक्ति से मुक्ति संभव है। क्योंकि भक्ति ज्ञान और कर्म की अपेक्षा उत्तम सुलभ तथा सरल है।

भक्ति एक ऐसा साधन है जिससे व्यक्ति भगवत्परायण होकर उसी में अपने चित्त को नियोजित कर अनायास ही समस्त कष्टों को पार कर जाता है। भक्ति सर्वसुलभ है, इसके लिये किसी पात्रता की आवश्यकता नहीं होती व्यक्ति किसी भी जाति, सम्प्रदाय या धर्म से सम्बन्धित हो भक्ति सबको समान भाव से मोक्ष का अधिकारी बना देती है। डा0 गोपीनाथ कविराज के शब्दों में "भक्ति ह्लादिनी शक्ति की एक विशेष वृत्ति है।"

भक्ति की प्राचीनता ऋग्वैदिक काल तक जाती है जहाँ वैदिक देवता 'वरुण' के स्तवन में आवेशपूर्ण आसक्ति एवं हार्दिक अनुराग से युक्त ऋचायें प्राप्त होती हैं। कठ एवं मुण्डक उपनिषदों में भक्ति को भगवत्कृपा वश प्राप्त होने वाली बताया गया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में उस देव के शरण की कामना की गयी है जो ब्रह्मा की रचना करके उसे वेद प्रदान करता है तथा जो बुद्धि का प्रकाशक है।[1] बहदारण्यक यदि देवोपासना को महत्व देता है[2] तो कठोपनिषद् भी प्रवचन, प्रज्ञा और अध्ययन के प्रति उपेक्षा प्रकट करता हुआ परमात्मा की अनुकम्पा को ही अधिक महत्त्व प्रदान करता है।[3] श्रीमद्भागवतपुराण सर्वप्रथम भक्ति को परम पुरूषार्थ एवं साध्यरूप में उद्घोषित करता है।

विष्णु एक ऋग्वैदिक देवता हैं किन्तु ऋग्वेद में उनका स्थान इन्द्र की महत्ता से आच्छादित है। वह इन्द्र के सहायक तथा उपेन्द्र के रूप में चित्रित हैं। वह इन्द्र की प्रेरणा से सोमपान करते हैं तथा असुरों के धनों का अपहरण करते हैं।[4] उत्तरवैदिक काल में उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि होती दिखायी पड़ती है। क्योंकि शतपथ ब्राह्मण में विष्णु को समस्त देवों में श्रेष्ठतम कहा गया है।[5]

***शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, इ0वि0वि0, इलाहाबाद।**

विष्णुपुराण में विष्णु को 'सर्वेश' कहकर उनमें सभी जीवों की प्रतिष्ठा बतलायी गयी है। वे कालातीत हैं और उनका विनाश असंभव है, वे ही सभी के आश्रय हैं।[6]

विष्णुपुराण में उल्लिखित है कि इन्द्र ने सौ यज्ञों के द्वारा विष्णु को परितुष्ट करके ही अमरेशत्व की प्राप्ति की थी।[7] तथा विष्णु को संतुष्ट कर बलि ने एक मन्वन्तर तक निर्विरोध इन्द्रत्व का उपभोग किया।[8] इस प्रकार हम देखते हें कि पौराणिक काल में विष्णु को प्रधान देवता का स्थान प्राप्त हो गया।

विष्णु की उपासना के सम्बन्ध में 'भक्ति' का प्रयोग 'मत्स्य' और विष्णुपुराण में दो अति महत्त्वपूर्ण स्थलों पर हुआ है। मत्स्यपुराण में इसका उल्लेख विभूतिद्वादशी नामक व्रत के प्रसंग में हुआ है। कहा गया है कि केशव को संतुष्ट करने का एकमात्र साधन– भक्ति है।[9] विष्णुपुराण में बतलाया गया है कि राजा शतधनु भक्ति– मार्ग का अवलम्बन कर विष्णु का चिन्तन करते थे।[10]

विष्णुपुराण में उल्लिखित है कि जब ध्रुव को सर्वोत्तम स्थान प्राप्त करने की प्रबल जिज्ञासा हुई तब सप्तर्षियों द्वारा उसे विष्णु– भक्ति का मार्ग बताया गया। मरीचि ऋषि कहते है कि बिना गोविन्द की अराधना के मनुष्य को परम पद नहीं मिल सकता। अत्रि के अनुसार, परमपुरुष जनार्दन परा प्रकृति इत्यादि से भी परे हैं, वे जिससे संतुष्ट होते हैं उसी को परमपद मिलता है। अंगिरा समस्त जगत् को अच्युत से ओत–प्रोत बताते हुए कहते हैं कि विष्णु की आराधना करने से अतिदुर्लभ पद 'मोक्ष' की भी प्राप्ति होती है क्योंकि विष्णु परब्रह्म, परधाम और परस्वरूप हैं। पुलह कहते हैं कि विष्णु यज्ञपति एवं जगत्पति हैं। उनकी आराधना करने से इन्द्र ने श्रेष्ठ ऐन्द्र स्थान को प्राप्त किया है अतएव उनकी अराधना अपेक्षित है। क्रतु के अनुसार विष्णु परम्पुरुष, यज्ञपुरूष तथा योगेश्वर हैं। उनकी आराधना करन से मन की कोई भी इच्छा पूरी हो जाती है फिर त्रैलोक्य के अन्तर्गत स्थान की प्राप्ति का कहना ही क्या?[11] अन्यत्र कहा गया है कि भगवान् विष्णु अपने द्वेषियों द्वारा कीर्तित होने पर उन्हें फल प्रदान करते हैं, फिर जो लोग उनकी भक्ति करते हैं उनको दुर्लभ फल देना तो उनका नियम ही है।[12]

विष्णुपुराण कहता है कि विष्णु की उपासना करने वाले मनुष्य को चाहिए कि वह पहले समस्त बाह्य विषयों से मन को हटा ले तत्पश्चात् उसे जगत् के एकमात्र आधार विष्णु में स्थिर करें। इस प्रकार तन्मयीभूत होकर विष्णु का जप करना चाहिए।[13] नृप शतधनु तन्मय भाव से विष्णु की उपासना करते हुए चित्रित किये गये हैं।[14] विष्णु विकार रहित है, नित्य हैं तथा उनका रूप सदैव एक सा

रहता है। वे विश्व के अधिष्ठान हैं, सूक्ष्मतर से भी सूक्ष्म हैं तथा विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के मूल कारण हैं।[15] उनका पारमार्थिक रूप अत्यन्त निर्मल है तथा वे ज्ञानमय हैं वे पर से भी पर हैं, अन्तरात्मा में उनका निवास है। वे रूप, वर्ण, नाम और विशेषण इत्यादि से सर्वथा रहित हैं। उनमें जन्म, वृद्धि, परिणाम, क्षय का सर्वथा अभाव है। उनके विषय में 'है' केवल इतना ही कहा जा सकता है।[16] वे स्वयं को ही परिपालित करते हैं तथा स्वयं को ही उपसंहृत करते हैं। ऐसे विष्णु सर्वश्रेष्ठ हैं, उपासना के योग्य हैं तथा भक्त को वर देने वाले हैं।[17]

विष्णुपुराण में उनके पर्वत और समुद्र दो आवासों का वर्णन मिलता है। वायुपुराण में भी विष्णु का प्रासाद निषद् पर्वत पर बताया गया है जिसको भ्रमण करते हुए पुरुरवा ने देखा था। पर सामान्य रूपेण समुद्र को ही विष्णु के आवास के रूप में दिखाया गया है जहाँ वह लक्ष्मी के साथ निवास करते हें। एक स्थल पर उल्लिखित है कि इन्द्रादि देवता उनके दर्शन करने के लिये क्षीरसागर के तट पर गये थे। देवों की स्तुति के पश्चात् जब विष्णु प्रकट हुए तो वे शंख, चक्र और गदा धारण किये हुए गरुड़ पर आरूढ़ थे। विष्णुपुराण के अनुसार उनकी आँखे विकसित कमल के समान हैं, वे पीताम्बर धारण करते हैं, उनके अलंकार किरीट, केयूर, हार, कटक आदि हैं उनकी चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित होते है।

पौराणिक विष्णु–भक्ति का सूक्ष्म स्वरूप औपनिषदिक वर्णन से बहुत साम्य रखता है। जैसे– विष्णुपुराण में नारायण को हृदयस्थ माना गया है।[18] इसी प्रकार काठक संहिता में भी उपास्य देव की स्थिति आत्मा में बतायी गयी है।[19] वैष्णव–भक्ति की पराकाष्ठा अन्य ग्रंथों में भी व्यक्त की गयी है। महाभारत के शान्तिपर्व में उल्लिखित है कि श्रीकृष्ण को किया हुआ एक प्रणाम भी दश अश्वमेध यज्ञों के समान हैं।[20] हरिवंश पुराण के अनुसार सत्वगुण में स्थित होकर सदा ही हरि का ध्यान करना चाहिए।[21]

संदर्भ ग्रन्थ–

1. यो ब्रह्माणं विद्धाति पूर्वं, यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तमहं देवात्मबुद्धि प्रकाशं मुमुक्षेर्वै शरणमहं प्रपद्ये।। श्वेताश्वतर उपनिषद् 6/18/
2. अथ योऽन्यां देवतामुपास्ते। बृहदारण्यक उपनिषद् 1/4/10
3. नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। कठोपनिषद् 2/23
4. मैकडानल, वैदिक माइथालॉजी पृष्ठ 41, ऋग्वेद 1/11/61
5. तद्विष्णुः प्रथमः प्राप। स देवानां श्रेष्ठोऽभवत्तस्मादाहुर्विष्णुः देवानां श्रेष्ठ इति। शतपथ ब्राह्मण 14/1/1/5
6. सर्वेश सर्वभूतात्मन्सर्वं सर्वाश्रच्युत, प्रसीद विष्णो ..... विष्णु पुराण 1/9/57
7. इष्ट्वा यमिन्द्रो यज्ञानां शतेनामरराजताम्। – विष्णुपुराण 5/17/7
8. यत्राम्बु विन्यस्य बलिर्मनोज्ञा– मन्वन्तरं पूर्णमपेतशत्रुम्।।– विष्णुपुराण 5/17/30
9. भक्त्या तुष्यति केशवः। – मत्स्य पुराण 100/36
10. आराधयामास विभुं –– भक्तितः – नान्यमानसः। – विष्णुपुराण 3/18/55–56
11. विष्णुपुराण– 1/11/40–49
12. विष्णुपुराण 4/15/17 अयं हि भगवान्– सम्यर्वग्भोक्तमतामिति।।
13. विष्णुपुराण– 1/11/53–55
14. विष्णुपुराण 3/18/55
15. अविकाराय– नित्याय– विश्वस्य स्थितौ सर्गे तथा प्रभुम्। – विष्णुपुराण 1/2/1–5
16. विष्णुपुराण 1/2/10–13
17. स एव सृज्यः स च सर्गकर्ता। – विष्णुपुराण 1/2/70
18. नारायणोऽयनं धाम्नां तस्याधारः स्वयं हृदि।। – विष्णुपुराण 2/9/4
19. तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती। – काठक संहिता 2/5/12
20. एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः। – महा0 शान्तिपर्व 47/91
21. हरिरेकः सदा ध्येयो भवद्भिः सत्त्वसंस्थितैः। – हरिवंश पुराण 3/89/9